0751CH40

40 पांडवों का धृतराष्ट्र के प्रति व्यवहार

कौरवों पर विजय पा लेने के बाद सारे राज्य पर पांडवों का एकछत्र अधिकार हो गया और उन्होंने कर्तव्य समझकर राज-काज सँभाल लिया। फिर भी जिस संतोष और सुख की उन्हें आशा थी, वह प्राप्त नहीं हुआ।

युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को आज्ञा दे रखी थी कि पुत्रों के बिछोह से दुखी राजा धृतराष्ट्र को किसी भी तरह की व्यथा न पहुँचने पाए। सिवाए भीमसेन के सब पांडव युधिष्ठिर के ही आदेशानुसार व्यवहार करते थे। पांडव वृद्ध धृतराष्ट्र का खूब आदर करते हुए उन्हें हर प्रकार का सुख एवं सुविधा पहुँचाने के प्रयत्न में लगे रहते थे, जिससे धृतराष्ट्र को अपने पुत्रों का अभाव महसूस न हो।

धृतराष्ट्र भी पांडवों से स्नेहपूर्ण व्यवहार किया करते थे। न तो पांडव उन्हें अप्रिय समझते थे और न धृतराष्ट्र ही पांडवों को अप्रिय समझते थे। परंतु भीमसेन कभी-कभी ऐसी बातें कर दिया करता था, जिससे धृतराष्ट्र के दिल को चोट पहुँचती। युधिष्ठिर के राजाधिराज बनने के थोड़े ही दिन बाद भीमसेन धृतराष्ट्र की किसी आज्ञा को परिणत न होने देता था। कभी-कभी धृतराष्ट्र को सुनाते हुए वह कह भी देता था कि दुर्योधन और उसके साथी अपनी नासमझी के कारण मारे गए हैं।

बात यह थी कि दुर्योधन, दु:शासन आदि द्वारा किए गए अत्याचारों और अपमानों का दुखद स्मरण भीमसेन के मन में अमिट रूप से अंकित हो चुका था। इस कारण न तो वह अपना पुराना वैर भूल पाता था और न क्रोध को ही चबा पाता था। कभी-कभी वह गांधारी तक के आगे उलटी-सीधी बातें कर दिया करता था। भीमसेन की इन तीखी बातों से धृतराष्ट्र के हृदय को बहुत चोट पहुँचती थी। गांधारी को भी इस कारण बहुत दुख होता था। परंतु वह विवेकशीला थीं और धर्म का मर्म जानती थीं। इसलिए भीमसेन की बातें चुपचाप सह लिया करती थीं तथा कुंती से स्फूर्ति पाकर धीरज धर लिया करती थीं।

यद्यपि महाराज युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र को हर प्रकार से आराम पहुँचाने का उचित प्रबंध कर रखा था, फिर भी धृतराष्ट्र का जी सुखभोग में

नहीं लगता था। एक तो वह बहुत वृद्ध हो गए थे, फिर भीमसेन की अप्रिय बातों से कभी-कभी उनका हृदय खिन्न हो जाता था। धीरे-धीरे उनके मन में विराग आ गया। इन बातों में गांधारी भी उनका अनुसरण किया करती थीं।

एक दिन धृतराष्ट्र धर्मराज के भवन में गए और उनसे बोले—"तुम तो शास्त्रों के ज्ञाता हो और यह भी जानते हो कि हमारे वंश की परंपरागत प्रथा के अनुसार हम वृद्धों को वल्कल धारण करके वन में जाना चाहिए। इसके अनुसार ही मैं अब तुम्हारी भलाई की कामना करता हुआ वन में जाकर रहना चाहता हूँ। तुम्हें इस बात की अनुमति मुझे देनी ही होगी।"

धृतराष्ट्र की ये बातें सुनकर युधिष्ठिर बहुत खिन्न हुए और भरे हुए हृदय से बोले—"अब मैंने तय किया है कि आज से आपका ही पुत्र युयुत्सु राजगद्दी पर बैठे या जिसे आप चाहें राजा बना दें। अथवा शासन की बागडोर स्वयं अपने हाथों में ले लें और प्रजा का पालन करें। मैं वन में चला जाऊँगा। राजा मैं नहीं बल्कि आप ही हैं। मैं ऐसी हालत में आपको अनुमति कैसे दे सकता हूँ?"

यह सुनकर धृतराष्ट्र बोले—"कुंती-पुत्र! मेरे मन में वन में जाकर तपस्या करने की इच्छा बड़ी प्रबल हो रही है। तुम्हारे साथ मैं इतने बरसों तक सुखपूर्वक रहा और तुम और तुम्हारे भाई सभी मेरी सेवा-सुश्रूषा करते रहे। वन में जाने का मेरा ही समय है, तुम्हारा नहीं। इस कारण वन में जाने की अनुमति तुम्हें देने का सवाल ही नहीं उठता। यह अनुमति तो तुमको देनी ही होगी।"

यह सुनकर युधिष्ठिर अंजलिबद्ध होकर काँपते हुए खड़े रहे। वह कुछ बोल न सके। उनसे ये बातें कहने के बाद धृतराष्ट्र आचार्य कृप एवं विदुर से बोले—"भैया विदुर और आचार्य! आप लोग महाराज युधिष्ठिर को समझा-बुझाकर मुझे वन में जाने की अनुमति दिलाइए।" और इस तरह से युधिष्ठिर से वन में जाने की अनुमति पाकर वृद्ध राजा धृतराष्ट्र उठे और गांधारी के कंधे पर हाथ रखकर लाठी टेकते हुए वन के लिए रवाना हुए।

माता कुंती भी उनके साथ रवाना हुईं। गांधारी ने अपनी आँखों पर पट्टी बाँधी हुई थी, इसीलिए वह कुंती के कंधे पर हाथ रखकर रास्ता टटोलती हुई जाने लगीं और इस तरह तीनों वृद्ध राजकुटुंबी राजधानी की सीमा पारकर वन की ओर चले।

धर्मराज समझ रहे थे कि माता कुंती गांधारी को थोड़ी दूर तक विदा करने के लिए साथ जा रही हैं। वह सँभलकर बोले—"माँ, तुम वन में क्यों जा रही हो? तुम्हारा जाना तो ठीक नहीं है। तुम्हीं ने आशीर्वाद देकर युद्ध के लिए भेजा था। अब तुम्हीं हमें छोड़कर वन को जाने लगीं। यह ठीक नहीं है।" इतना कहते-कहते युधिष्ठिर का गला भर आया। किंतु उनके आग्रह करने पर भी कुंती अपने निश्चय पर अटल रहीं। युधिष्ठिर अवाक् होकर खड़े हुए देखते रहे।

धृतराष्ट्र, गांधारी और कुंती ने तीन वर्ष तक वन में तपस्वियों का-सा जीवन व्यतीत किया। संजय भी उनके साथ था।